Kavya Setu

A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal

Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

19वीं सदी में पानीपत की कृषि अर्थव्यवस्था, व्यापार एवं हस्तशिल्प में परिवर्तन

Radhika

Research Scholar, Department of History, Jyoti Vidyapeeth women's university, Jaipur

mansilakra7@gmail.com

Deepak Singh

Assistant professor, Jyoti Vidyapeeth women's university, Jaipur

vishendeepaksingh@gmail.com

सारांश

उन्नीसवीं सदी में पानीपत की अर्थव्यवस्था कृषि, स्थानीय व्यापार और हस्तशिल्प के पारस्परिक संबंधों पर आधारित थी। यमुना के निकटवर्ती खादर क्षेत्र, अपेक्षाकृत ऊँचे बाँगर भूभाग तथा नहरों से प्रभावित क्षेत्रों की भौगोलिक विषमताओं ने खेती की प्रकृति और उत्पादन की संभावनाओं को अलग–अलग रूप दिया। इसी अवधि में ब्रिटिश भू–राजस्व प्रशासन, सिंचाई व्यवस्था, सड़क और रेल परिवहन तथा बाजारों के विस्तार ने आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित किया। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य इन परिवर्तनों को केवल प्रगति अथवा पतन की एकरेखीय प्रक्रिया मानने के बजाय उनके क्षेत्रीय अंतर, अवसरों और सीमाओं का विश्लेषण करना है। अध्ययन में विशेष रूप से डेन्जिल इबेटसन की 1872–1880 की पानीपत तहसील संबंधी बंदोबस्त रिपोर्ट तथा 1883–84 और 1892 के करनाल जिला गजेटियरों को आधार बनाया गया है। ये स्रोत उन्नीसवीं सदी के पानीपत के कृषि उत्पादन, भूमि–राजस्व, व्यापारिक मार्गों और शिल्प व्यवसायों पर प्रत्यक्ष जानकारी देते हैं। उस समय पानीपत वर्तमान स्वतंत्र जिले के रूप में नहीं, बल्कि बदलती प्रशासनिक सीमाओं के अंतर्गत एक नगर एवं तहसील के रूप में विद्यमान था। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सिंचाई और परिवहन की उपलब्धता ने कुछ कृषि क्षेत्रों तथा व्यापारिक गतिविधियों को नए अवसर दिए, किंतु वर्षा की अनिश्चितता, राजस्व माँग, ऋण, बाजार–मूल्यों के उतार–चढ़ाव और व्यापारिक मार्गों के स्थानांतरण ने आर्थिक जोखिम भी उत्पन्न किए। हस्तशिल्प के क्षेत्र में ग्रामीण बुनाई के साथ–साथ पानीपत के ताँबे–पीतल के बर्तन, चमड़े के पात्र, सजावटी काँच और धातु–आभूषण उल्लेखनीय थे। कुछ विशिष्ट शिल्पों में गिरावट के साक्ष्य मिलते हैं, परंतु समस्त हस्तशिल्प के एकसमान विनाश का निष्कर्ष उपलब्ध अभिलेखों से नहीं निकलता। इस प्रकार पानीपत की उन्नीसवीं सदी की आर्थिक संरचना को कृषि, बाजार और शिल्प के बीच निरंतर बदलते संबंधों के रूप में समझना अधिक उचित है।

मुख्य शब्दः पानीपत, उन्नीसवीं सदी, कृषि अर्थव्यवस्था, भूमि–राजस्व, पश्चिमी यमुना नहर, व्यापार, हस्तशिल्प, औपनिवेशिक आर्थिक परिवर्तन।

प्रस्तावना

भारतीय आर्थिक इतिहास में उन्नीसवीं सदी व्यापक प्रशासनिक, संस्थागत और बाजार–संबंधी परिवर्तनों की अवधि थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के विस्तार और बाद में ब्रिटिश क्राउन के प्रत्यक्ष शासन के अंतर्गत भूमि के सर्वेक्षण, राजस्व निर्धारण, परिवहन, न्यायिक व्यवस्थाओं और व्यापारिक संपर्कों में परिवर्तन हुए। इन प्रक्रियाओं का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में समान नहीं था। सिंचित और असिंचित कृषि प्रदेशों, बड़े बाजारों और छोटे कस्बों तथा बाजारोन्मुख और निर्वाह–प्रधान उत्पादन करने वाले समुदायों के अनुभव अलग–अलग रहे। इस विविधता को समझने के लिए स्थानीय आर्थिक इतिहास का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। पानीपत ऐसा ही एक उदाहरण है, जहाँ कृषि भूमि, कस्बाई व्यापार और हस्तशिल्प के बीच घनिष्ठ संबंध मौजूद थे।

पानीपत को केवल उसके युद्धों अथवा आधुनिक औद्योगिक पहचान के आधार पर देखना उसके आर्थिक अतीत की अपूर्ण तस्वीर प्रस्तुत करता है। उन्नीसवीं सदी का पानीपत एक ऐसा कस्बा था जिसकी आर्थिक गतिविधियाँ आसपास के कृषि क्षेत्र से जुड़ी हुई थीं। खेतों में उत्पादित गेहूँ, चना, कपास तथा अन्य अनाज स्थानीय आवश्यकता पूरी करने के साथ बाजारों तक पहुँचते थे। व्यापारी कृषि उपज के विनिमय, ग्रामीण उपभोग की वस्तुओं की आपूर्ति और ऋण–संबंधी गतिविधियों से जुड़े थे। दूसरी ओर ग्रामीण परिवारों और कारीगरों द्वारा तैयार वस्तुएँ खेती तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करती थीं। नगरीय शिल्प में धातु–पात्रों और सजावटी उत्पादों का अपना स्थान था। इसलिए पानीपत की आर्थिक संरचना को तीन पृथक क्षेत्रों कृषि, व्यापार और हस्तशिल्प के साधारण योग के रूप में नहीं, बल्कि एक–दूसरे पर निर्भर गतिविधियों की व्यवस्था के रूप में देखना आवश्यक है। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में पानीपत दिल्ली क्षेत्र की प्रशासनिक व्यवस्थाओं से जुड़ा था। गजेटियर के अनुसार 1824 में गठित पानीपत जिले में करनाल, पानीपत और सोनीपत सम्मिलित थे। दिल्ली क्षेत्र को 1858 में पंजाब में स्थानांतरित किया गया और इसके बाद प्रशासनिक पुनर्गठन हुए।

इस शोध का केंद्रीय प्रश्न है कि उन्नीसवीं सदी में पानीपत की कृषि अर्थव्यवस्था, व्यापार और हस्तशिल्प के स्वरूप में क्या परिवर्तन हुए तथा इन परिवर्तनों को भूमि–राजस्व नीति, जल–उपलब्धता, प्राकृतिक संकट, बाजार और परिवहन ने किस प्रकार प्रभावित किया। अध्ययन ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक स्रोतों में समकालीन बंदोबस्त रिपोर्ट, जनगणना तथा जिला गजेटियर सम्मिलित हैं, आर्थिक इतिहास के व्यापक विवेचन के लिए अन्य प्रकाशित शोधों का सहारा लिया गया है। लेख का उद्देश्य किसी

पूर्वनिर्धारित धारणा को सिद्ध करना नहीं, बल्कि उपलब्ध स्थानीय साक्ष्यों के आधार पर परिवर्तन की जटिल प्रक्रिया को स्पष्ट करना है।

पानीपत का भौगोलिक परिवेश एवं उन्नीसवीं सदी की आर्थिक आधारभूमि

किसी क्षेत्र की कृषि अर्थव्यवस्था को समझने के लिए उसकी भौगोलिक संरचना का विश्लेषण आवश्यक है। पानीपत उत्तर भारतीय मैदान का हिस्सा होने के साथ यमुना नदी तथा ऐतिहासिक आवागमन मार्गों से संबंधित था। यहाँ भूमि की प्रकृति, जलस्तर, वर्षा की उपलब्धता और सिंचाई के साधनों में अंतर होने के कारण कृषि उत्पादन का स्वरूप भी एकसमान नहीं था। खादर में नदी के प्रभाव से बनी भूमि, बाँगर में अपेक्षाकृत पुरानी जलोढ़ मिट्टी तथा अन्य ऊँचे भूभागों की विशेषताएँ खेती की संभावनाओं को निर्धारित करती थीं। उन्नीसवीं सदी के अभिलेखों में मिट्टी की उर्वरता को केवल उसकी बनावट से नहीं, बल्कि उपलब्ध पानी, श्रम और खेती के साधनों के साथ जोड़कर देखा गया है। कुछ कठोर मिट्टियाँ पर्याप्त पानी मिलने पर अच्छी फसल दे सकती थीं, जबकि वर्षा का अभाव उसी भूमि को अनुपयोगी बना सकता था। इस प्रकार पानीपत की कृषि आर्थिक संभावनाओं का आधार प्राकृतिक संसाधनों और उन तक पहुँच के संयुक्त प्रभाव में निहित था।

पानीपत का स्थान कृषि के साथ व्यापार के लिए भी महत्त्वपूर्ण था। यह नगर दिल्ली के उत्तर में ग्रैंड ट्रंक रोड पर स्थित था। वर्ष 1892 के गजेटियर में इसे उसी नाम की तहसील का प्रशासनिक मुख्यालय बताया गया है और 1881 की जनगणना के आधार पर इसकी जनसंख्या 25,022 दर्ज की गई है। नगर में दो प्रमुख बाजार–मार्गों का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पानीपत केवल आसपास के गाँवों की आबादी का केंद्र नहीं था, बल्कि बाजार, प्रशासन और कारीगरी से संबंधित गतिविधियों का भी स्थान था। तथापि नगर की जनसंख्या अथवा सड़क पर स्थिति मात्र से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वहाँ व्यापक अंतरराष्ट्रीय या दूरगामी व्यापार होता था। उसी गजेटियर के अनुसार नगर की आर्थिक गतिविधियों में कृषि के बाद व्यापार और बैंकिंग का स्थान था, किंतु अधिकांश व्यापार स्थानीय प्रकृति का था।

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से उत्तरार्ध तक पानीपत की प्रशासनिक स्थिति में हुए बदलाव भी आर्थिक अध्ययन के लिए प्रासंगिक हैं। राजस्व वसूली, भूमि–अधिकार और प्रशासनिक न्याय के नियम क्षेत्र की प्रशासनिक संबद्धता के अनुसार बदलते रहे। 1824 में पानीपत नाम से बने जिले की सीमाएँ बाद के करनाल जिले से भिन्न थीं। इसलिए 1832–33 के व्यापार संबंधी पुराने अभिलेख में प्रयुक्त 'पानीपत जिला' और 1892 के करनाल गजेटियर में प्रयुक्त 'पानीपत तहसील' को समान भौगोलिक इकाई नहीं माना जा सकता। इस अंतर की उपेक्षा करने पर कृषि उत्पादन, व्यापारिक मात्रा और आबादी के तुलनात्मक निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण हो

सकते हैं। इस शोध में प्रशासनिक इतिहास को स्वतंत्र राजनीतिक विषय बनाने के बजाय आर्थिक आँकड़ों की व्याख्या के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि माना गया है।

पानीपत की आर्थिक आधारभूमि में गाँव और नगर के पारस्परिक संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। गाँव खाद्यान्न, कपास, घी और अन्य कृषि उत्पाद उपलब्ध कराते थे, नगरों से उन्हें धातु की वस्तुएँ, बेहतर ढंग से निर्मित शिल्प, व्यापारिक सेवाएँ और बाहर से लाई गई वस्तुएँ प्राप्त होती थीं। ग्रामीण उत्पादन का पूरा हिस्सा बाजार में नहीं पहुँचता था। उसका एक भाग परिवार की खपत, बीज, पशुओं के चारे, श्रम–प्रतिफल और स्थानीय विनिमय में उपयोग होता था। इसी कारण बाजार में आने वाले माल की मात्रा को कुल कृषि उत्पादन का पर्याय नहीं माना जा सकता। क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के अध्ययन में इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक है कि उत्पादन और विक्रय के बीच घरेलू उपभोग, भंडारण, ढुलाई तथा विनिमय की अनेक अवस्थाएँ विद्यमान थीं। इस आर्थिक संरचना में पर्यावरणीय जोखिम लगातार उपस्थित थे। यमुना के निकटवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ और नदी के मार्ग में बदलाव से भूमि प्रभावित हो सकती थी, जबकि अपेक्षाकृत ऊँचे भागों में अपर्याप्त वर्षा एक प्रमुख समस्या थी। किसानों के लिए एक अच्छी फसल केवल उसी वर्ष की आय नहीं होती थी, उससे अगले मौसम का बीज, पशुओं का चारा, पारिवारिक आवश्यकताएँ और राजस्व या ऋण की अदायगी भी सुनिश्चित होती थी। इसलिए लगातार खराब मौसम का प्रभाव खेती से आगे बढ़कर व्यापार और हस्तशिल्प तक पहुँचता था।

कृषि उत्पादन एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

उन्नीसवीं सदी में पानीपत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि थी। खेती का उद्देश्य केवल व्यापारिक लाभ अर्जित करना नहीं, बल्कि खाद्यान्न की उपलब्धता और ग्रामीण परिवारों की आजीविका सुनिश्चित करना भी था। इस क्षेत्र में गेहूँ, चना, जौ, ज्वार, बाजरा, धान और कपास जैसी प्रमुख फसलें उगाई जाती थीं। फसलों का चयन मिट्टी की प्रकृति, वर्षा, सिंचाई और मौसम के अनुसार होता था। रबी और खरीफ की फसलें कृषि गतिविधियों तथा ग्रामीण श्रम के वार्षिक क्रम को निर्धारित करती थीं। करनाल जिला गजेटियर के कृषि संबंधी विवरण से स्पष्ट होता है कि विभिन्न फसलों की उत्पादन–प्रक्रिया और आवश्यक संसाधनों में अंतर था। इसलिए समान भूमि क्षेत्र वाले किसानों की उत्पादन क्षमता और कृषि लागत भी अलग–अलग हो सकती थी। पानीपत के खादर तथा नहर–सिंचित क्षेत्रों की कृषि परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत विशिष्ट थीं। 1892 के करनाल जिला गजेटियर में इन क्षेत्रों से गेहूँ, कपास, चना और उत्तम किस्म के धान के अधिशेष को बाहर भेजे जाने का उल्लेख मिलता है। इससे संकेत मिलता है कि अनुकूल प्राकृतिक परिस्थितियों और जल–संसाधनों की उपलब्धता ने कुछ क्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकताओं से अधिक उत्पादन संभव बनाया। इसके विपरीत, वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों में मोटे अनाज तथा पशुपालन का विशेष महत्त्व था। कृ

षि अधिशेष का अर्थ सभी किसानों की आर्थिक समृद्धि नहीं था, क्योंकि उत्पादन और उससे प्राप्त लाभ भूमि, संसाधनों तथा बाजार तक पहुँच के अनुसार भिन्न हो सकते थे।

कृषि उत्पादन में पशुधन की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। बैलों का उपयोग हल चलाने, कुओं से पानी निकालने और कृषि उपज की ढुलाई में किया जाता था। इसलिए पशुधन खेती की निरंतरता के लिए आवश्यक संसाधन था। प्राकृतिक संकट की स्थिति में पशुओं की हानि का प्रभाव तत्कालीन उत्पादन के साथ आगामी कृषि मौसम पर भी पड़ता था। करनाल जिला गजेटियर में 1824–25 के अकाल के दौरान चारे की कमी, पशुओं की मृत्यु और कृषि कार्य बाधित होने का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार 1833–34 के संकट ने फसलों तथा पशुधन को प्रभावित किया। इन घटनाओं से स्पष्ट होता है कि कृषि संकट केवल एक मौसम की उत्पादन–हानि तक सीमित नहीं था, बल्कि भविष्य की खेती के लिए आवश्यक संसाधनों को भी कमजोर कर सकता था।

उन्नीसवीं सदी के दौरान कृषि उपज का बाजारों से संबंध भी महत्त्वपूर्ण था। गेहूँ, चना और कपास जैसी फसलों का अधिशेष स्थानीय तथा बाहरी बाजारों में भेजा जाता था। किसान अपनी अतिरिक्त उपज बेचकर नकद आय प्राप्त कर सकते थे, जिसका उपयोग राजस्व भुगतान, घरेलू आवश्यकताओं और कृषि कार्यों में किया जा सकता था। हालाँकि बाजार से संपर्क सभी किसानों के लिए समान रूप से लाभकारी नहीं था। परिवहन–व्यय, मध्यस्थों की भूमिका, ऋण और तत्काल नकदी की आवश्यकता बिक्री से प्राप्त वास्तविक आय को प्रभावित कर सकती थी। इस कारण उत्पादन बढ़ने और किसानों की आर्थिक स्थिति सुधरने को एक समान प्रक्रिया नहीं माना जा सकता। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी में पानीपत की कृषि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन भूमि की प्रकृति, फसल–विविधता, पशुधन, प्राकृतिक संकट और बाजार–संबंधों से प्रभावित था। कृषि उत्पादन के अवसर विभिन्न क्षेत्रों में असमान थे, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विकास की संभावनाओं के साथ आर्थिक जोखिम भी बने रहे।

सिंचाई व्यवस्था एवं क्षेत्रीय विषमताएँ

उन्नीसवीं सदी में पानीपत की कृषि अर्थव्यवस्था के विकास में सिंचाई व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। वर्षा की अनिश्चितता के कारण केवल मानसून पर निर्भर खेती जोखिमपूर्ण थी। क्षेत्र में सिंचाई के प्रमुख साधनों में पश्चिमी यमुना नहर, कुएँ तथा नदी और बाढ़ से प्राप्त नमी सम्मिलित थे। नहर प्रणाली ने कुछ क्षेत्रों में कृषि उत्पादन की संभावनाओं को बढ़ाया, किंतु सभी गाँवों और खेतों तक पानी की समान पहुँच नहीं थी। सिंचित और असिंचित क्षेत्रों के बीच यह अंतर फसल की सुरक्षा, उत्पादन क्षमता तथा किसानों की आर्थिक परिस्थितियों को प्रभावित करता था। करनाल जिला गजेटियर में उल्लिखित 1878 की अकाल–संबंधी रिपोर्ट के अनुसार जिले की लगभग 20 प्रतिशत खेती नहरों से, 19 प्रतिशत कुओं से और

एक प्रतिशत बाढ़ के पानी से सिंचित थी, जबकि शेष लगभग 60 प्रतिशत खेती वर्षा पर निर्भर थी। ये आँकड़े तत्कालीन करनाल जिले के हैं, केवल पानीपत तहसील के नहीं। फिर भी इनसे क्षेत्रीय कृषि में सिंचाई की उपलब्धता और वर्षा पर निर्भरता की स्थिति स्पष्ट होती है। पानीपत के संबंध में 1892 के गजेटियर में उल्लेख मिलता है कि यहाँ लगभग एक–तिहाई फसलें सिंचित थीं, जबकि करनाल में यह अनुपात लगभग एक–आठवाँ और कैथल में उससे भी कम था। यह अंतर उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पानीपत की तुलनात्मक सिंचाई उपलब्धता को दर्शाता है। हालाँकि मौसम के अनुसार सिंचित क्षेत्र बदलता था, इसलिए इन आँकड़ों को पूरी शताब्दी की स्थायी स्थिति नहीं माना जा सकता।

पश्चिमी यमुना नहर ने वर्षा पर निर्भरता कम करने और फसलों को आवश्यक समय पर पानी उपलब्ध कराने की संभावनाएँ उत्पन्न कीं। विशेष रूप से रबी की फसलों तथा अधिक जल की आवश्यकता वाली खेती के लिए सिंचाई उपयोगी थी। पर्याप्त नमी मिलने से बुआई और अंकुरण की परिस्थितियाँ बेहतर हो सकती थीं। तथापि नहर से लाभ प्राप्त करना उसकी शाखाओं की स्थिति, पानी के नियमित वितरण और खेतों की भौगोलिक बनावट पर निर्भर था। कुछ खेतों तक पानी आसानी से पहुँच सकता था, जबकि ऊँचे अथवा नहर से दूर स्थित क्षेत्रों में सिंचाई की समस्या बनी रह सकती थी। अपर्याप्त जल–निकासी भी कृषि के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न कर सकती थी। कुओं द्वारा सिंचाई एक अन्य महत्त्वपूर्ण साधन था। कुएँ के निर्माण, रखरखाव तथा पशुओं की सहायता से पानी निकालने के लिए पूँजी और श्रम आवश्यक थे। इसलिए इसकी उपलब्धता किसानों की आर्थिक क्षमता से भी संबंधित थी। सीमित संसाधनों वाले किसानों को साझा जल–स्रोतों अथवा वर्षा पर अधिक निर्भर रहना पड़ सकता था।

क्षेत्रीय विषमताओं का एक अन्य कारण प्राकृतिक परिस्थितियाँ थीं। यमुना के निकटवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ का जोखिम था, जबकि ऊँचे और अपेक्षाकृत शुष्क भूभागों में जल की कमी कृषि उत्पादन को प्रभावित करती थी। इस प्रकार पानी की अधिकता और अभाव दोनों समस्याएँ मौजूद थीं। निष्कर्षतः, पश्चिमी यमुना नहर और कुओं ने पानीपत में कृषि की संभावनाओं को बढ़ाया, किंतु सिंचाई की असमान उपलब्धता के कारण क्षेत्रीय विषमताएँ बनी रहीं। सिंचाई से प्राप्त वास्तविक लाभों का अधिक सटीक आकलन करने के लिए गाँववार जल–उपलब्धता तथा कृषि अभिलेखों का अध्ययन आवश्यक है।

ब्रिटिश भू–राजस्व व्यवस्था एवं कृषक संकट

उन्नीसवीं सदी में पानीपत की कृषि अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश भू–राजस्व व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। भूमि–राजस्व औपनिवेशिक प्रशासन की आय का प्रमुख स्रोत था, जबकि किसानों के लिए इसका भुगतान कृषि उत्पादन और उपलब्ध संसाधनों पर निर्भर करता था। राजस्व निर्धारण की पद्धति, भुगतान की समय–सीमा तथा बकाया वसूली के नियम ग्रामीण आर्थिक

परिस्थितियों को प्रभावित करते थे। डेन्जिल इबेटसन की पानीपत तहसील एवं करनाल परगने की बंदोबस्त रिपोर्ट भूमि–वर्गीकरण, स्वामित्व, राजस्व निर्धारण और कृषि परिस्थितियों के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण प्राथमिक स्रोत है। ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक दशकों में राजस्व की माँग और किसानों की वास्तविक भुगतान क्षमता के बीच असंतुलन की समस्याएँ सामने आईं। करनाल जिला गजेटियर के अनुसार कुछ गाँव निर्धारित राजस्व चुकाने में असमर्थ थे, जिसके कारण भूमि छोड़ने और आबादी के स्थानांतरण जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं। बकाया वसूली के लिए कठोर उपाय भी अपनाए गए। फसलों की विफलता, अपर्याप्त संसाधन और प्रतिकूल राजस्व आकलन इन समस्याओं को और गंभीर बना सकते थे। इससे स्पष्ट होता है कि राजस्व व्यवस्था का प्रभाव केवल सरकारी आय तक सीमित नहीं था, बल्कि ग्रामीण आजीविका और कृषि की निरंतरता से भी संबंधित था।

भूमि–सर्वेक्षण और बंदोबस्त के अंतर्गत खेतों की माप, भूमि की श्रेणियों तथा स्वामित्व संबंधी अधिकारों का व्यवस्थित अभिलेखन किया गया। वर्ष 1828 के सर्वेक्षण के बाद राजस्व निर्धारण को अधिक नियमित बनाने और फसल कटाई के पश्चात भुगतान जैसी व्यवस्थाओं में सुधार का उल्लेख मिलता है। हालाँकि लिखित अधिकारों की उपलब्धता किसानों को आर्थिक कठिनाइयों से पूर्ण सुरक्षा प्रदान नहीं करती थी। यदि राजस्व माँग वास्तविक उत्पादन क्षमता के अनुरूप नहीं होती, तो भुगतान का दबाव बना रह सकता था। नकद राजस्व भुगतान की आवश्यकता ने किसानों को कृषि उपज की बिक्री और आवश्यकता पड़ने पर ऋण लेने की ओर प्रेरित किया। कमजोर फसल, कम बाजार–मूल्य और तत्काल भुगतान की बाध्यता उनकी कठिनाइयाँ बढ़ा सकती थीं। ऋण अल्पकालिक सहायता प्रदान कर सकता था, किंतु ब्याज और पुनर्भुगतान की शर्तें भविष्य की आय को प्रभावित करती थीं। गजेटियर में कृषि उत्पादों की कीमतों में अलग–अलग वृद्धि का भी उल्लेख मिलता है, लेकिन मूल्य–वृद्धि को किसानों की वास्तविक आय में समान वृद्धि का प्रमाण नहीं माना जा सकता। रमेशचंद्र दत्त ने औपनिवेशिक भू–राजस्व नीतियों और कृषक संकट के संबंधों पर बल दिया है। पानीपत के स्थानीय अभिलेख प्रारंभिक राजस्व कठिनाइयों के साथ बाद के प्रशासनिक सुधारों को भी दर्शाते हैं। इस प्रकार ब्रिटिश भू–राजस्व व्यवस्था ने पानीपत की कृषि अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया, जबकि प्राकृतिक संकट, भुगतान संबंधी दबाव और किसानों की असमान संसाधन–क्षमता ने इन प्रभावों को अधिक जटिल बनाया।

व्यापार, बाजार एवं परिवहन में परिवर्तन

उन्नीसवीं सदी में पानीपत की व्यापारिक गतिविधियाँ उसकी भौगोलिक स्थिति, ग्रामीण उत्पादन और परिवहन व्यवस्था से प्रभावित थीं। दिल्ली के उत्तर में ग्रैंड ट्रंक रोड पर स्थित होने के कारण यह नगर आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों तथा प्रमुख व्यापारिक केंद्रों से जुड़ा हुआ

था। कृषि उपज और आवश्यक वस्तुओं का विनिमय स्थानीय अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। इस अवधि में सड़कों और रेलवे के विस्तार ने व्यापारिक मार्गों तथा वस्तुओं के आवागमन की दिशा में परिवर्तन उत्पन्न किए। वर्ष 1892 के करनाल जिला गजेटियर में 1832–33 के व्यापारिक अभिलेखों के आधार पर तेलहन, कपास, नमक, लोहा, लकड़ी और ऊन जैसी वस्तुओं के आवागमन का उल्लेख मिलता है। उस समय उत्तर–दक्षिण दिशा का काफी व्यापार हाँसी–हिसार मार्ग से होता था। इससे स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय व्यापार केवल पानीपत तक सीमित नहीं था, बल्कि अनेक व्यापारिक मार्गों और बाजारों के माध्यम से संचालित होता था। वस्तुओं की प्रकृति, परिवहन लागत और बाजारों की दूरी व्यापारिक मार्गों के चयन को प्रभावित करती थीं।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में रेलवे के विकास ने परंपरागत व्यापारिक व्यवस्था को प्रभावित किया। गजेटियर के अनुसार यमुना के दूसरी ओर रेलमार्ग खुलने से ग्रैंड ट्रंक रोड का कुछ व्यापार पानीपत से हट गया। इसके बाद दिल्ली–कालका रेलवे लाइन के पानीपत के निकट से गुजरने के कारण नए परिवहन संपर्क उपलब्ध हुए। रेलवे ने लंबी दूरी तक वस्तुओं को पहुँचाने की संभावनाएँ बढ़ाई, जबकि स्थानीय स्तर पर बैलगाड़ियों और सड़क परिवहन का महत्त्व बना रहा। कृषि उत्पादों के व्यापार में पानीपत की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। खादर तथा नहर–सिंचित क्षेत्रों से गेहूँ, कपास, चना और उत्तम धान का अधिशेष बाहरी बाजारों में भेजा जाता था। कैथल क्षेत्र का चना पानीपत के रास्ते दिल्ली पहुँचता था। इसी प्रकार शामली गुड़ के व्यापार का प्रमुख केंद्र था, जहाँ नमक, बाजरा, मोठ, तेलहन और घी जैसी वस्तुएँ भेजी जाती थीं तथा वापसी में गुड़ लाया जाता था। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के बीच वस्तुओं का दोतरफा आदान–प्रदान होता था।

स्थानीय व्यापारिक व्यवस्था में बड़े व्यापारी, गाँव के बनिए, कृषक और स्वतंत्र बैलगाड़ी–मालिक सम्मिलित थे। करनाल, कैथल और पानीपत क्षेत्र के प्रमुख बाजारों में गिने जाते थे। कुछ कृषक और गाड़ी–मालिक स्वयं वस्तुओं की ढुलाई एवं विनिमय करते थे, जिससे उन्हें मध्यस्थों पर पूरी तरह निर्भर नहीं रहना पड़ता था। नगरों से लोहा, तैयार कपड़ा, नमक और अन्य उपयोगी वस्तुएँ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाई जाती थीं। छोटे फेरीवाले भी ग्रामीण उपभोक्ताओं और नगरीय बाजारों के बीच संपर्क स्थापित करते थे। पानीपत की नगरपालिका का गठन 1867 में हुआ तथा 1884 में उसका पुनर्गठन किया गया। नगरपालिका की आय का प्रमुख स्रोत नगर में उपभोग के लिए लाई जाने वाली वस्तुओं पर लगाया जाने वाला चुंगी–कर था। इससे व्यापार और स्थानीय प्रशासन के बीच वित्तीय संबंध का संकेत मिलता है। निष्कर्षतः, उन्नीसवीं सदी में पानीपत का व्यापार कृषि अधिशेष, स्थानीय बाजारों और बदलते परिवहन मार्गों पर आधारित था। रेलवे के विस्तार से कुछ पुराने व्यापारिक मार्ग

प्रभावित हुए, जबकि नए संपर्क विकसित हुए। इस प्रकार नगर की व्यापारिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ, किंतु स्थानीय और क्षेत्रीय व्यापार उसका प्रमुख आर्थिक आधार बना रहा।

परंपरागत हस्तशिल्प एवं व्यावसायिक परिवर्तन

उन्नीसवीं सदी में पानीपत की अर्थव्यवस्था में परंपरागत हस्तशिल्प का महत्त्वपूर्ण स्थान था। यह ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ स्थानीय व्यापार और कारीगरों की आजीविका का प्रमुख साधन था। वर्ष 1892 के करनाल जिला गजेटियर में सूती एवं ऊनी बुनाई, रस्सी निर्माण, मिट्टी के बर्तन, ईंट, टोकरियाँ तथा चटाइयाँ बनाने जैसे ग्रामीण व्यवसायों का उल्लेख मिलता है। इन वस्तुओं का उत्पादन मुख्यतः दैनिक उपयोग और स्थानीय आवश्यकताओं के लिए किया जाता था। कुछ कारीगरों को उनकी सेवाओं के बदले अनाज अथवा अन्य वस्तुओं के रूप में भुगतान प्राप्त होता था। इस प्रकार हस्तशिल्प केवल नकद व्यापार पर निर्भर नहीं था, बल्कि ग्रामीण विनिमय व्यवस्था का भी महत्त्वपूर्ण अंग था। ग्रामीण हस्तशिल्प का कृषि और पशुपालन से घनिष्ठ संबंध था। रस्सियाँ कृषि कार्यों तथा पशुओं के उपयोग में आती थीं, जबकि मिट्टी के पात्र अनाज एवं पानी के भंडारण के लिए आवश्यक थे। इसी प्रकार टोकरी, चटाई और हाथ से बुने वस्त्र घरेलू जरूरतों की पूर्ति करते थे। कारीगरों की आजीविका स्थानीय उपभोक्ताओं की मांग और भुगतान क्षमता पर निर्भर करती थी। कृषि उत्पादन में गिरावट होने पर वस्तुओं की खरीद तथा अनाज के रूप में मिलने वाला पारिश्रमिक प्रभावित हो सकता था। इसलिए हस्तशिल्प और कृषि को एक–दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र आर्थिक गतिविधियाँ नहीं माना जा सकता।

पानीपत नगर की शिल्पगत पहचान ग्रामीण हस्तशिल्प से कुछ अलग थी। समकालीन गजेटियर में ताँबे और पीतल के बर्तनों तथा घी एवं तेल रखने के लिए चमड़े से निर्मित 'कूपा' नामक पात्रों का विशेष उल्लेख मिलता है। इन वस्तुओं का निर्यात भी किया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि पानीपत के कुछ हस्तशिल्प स्थानीय उपभोग के अतिरिक्त बाहरी बाजारों की आवश्यकताओं को भी पूरा करते थे। धातु–पात्रों का निर्माण कारीगरों के तकनीकी कौशल, कच्चे माल की उपलब्धता और ग्राहकों की मांग से संबंधित था। चमड़े के पात्रों का उपयोग घी तथा तेल जैसी वस्तुओं के भंडारण और परिवहन में होता था।

धातु–शिल्प के अतिरिक्त पानीपत सजावटी वस्तुओं के निर्माण के लिए भी जाना जाता था। लाहौर स्कूल ऑफ आर्ट के प्राचार्य लॉकवुड किपलिंग के विवरण में छोटे धातु–उत्पादों, चाँदी के मोती–जैसे आभूषणों, सजावटी सरौतों तथा कैंचियों का उल्लेख मिलता है। इन वस्तुओं के निर्माण में पीतल, काँच और अन्य सामग्रियों का प्रयोग किया जाता था। इससे स्थानीय कारीगरों की कलात्मक दक्षता और विशिष्ट निर्माण–कौशल का पता चलता है। तथापि गजेटियर में कैप्टन रॉबर्ट्स की 1882 की टिप्पणी के आधार पर चाँदी के विशेष आभूषण

बनाने वाले छोटे व्यवसाय में गिरावट का भी उल्लेख है। यह परिवर्तन उस विशिष्ट शिल्प की कठिनाइयों को दर्शाता है, लेकिन इससे समस्त हस्तशिल्प के पतन का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। काँच निर्माण पानीपत की एक अन्य उल्लेखनीय शिल्प गतिविधि थी। गजेटियर में महिलाओं के वस्त्रों की सजावट के लिए छोटे परावर्तक काँच तैयार करने की प्रक्रिया का विवरण मिलता है। इनका उपयोग कपड़ों तथा कभी–कभी भवनों की सजावट में होता था।

वस्त्र–शिल्प के संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आधुनिक पानीपत की कंबल और कालीन उद्योग संबंधी पहचान को सीधे उन्नीसवीं सदी पर लागू नहीं किया जा सकता। वर्ष 1892 के गजेटियर में करनाल जिले से साधारण कंबलों के निर्यात का उल्लेख मिलता है, जबकि विशेष सूती वस्त्र 'चौटाही' का संबंध कैथल से बताया गया है। इसलिए जिले में निर्मित सभी वस्त्रों को पानीपत नगर का उत्पादन मानना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा। तीर्थंकर रॉय ने परंपरागत भारतीय उद्योगों के अध्ययन में विभिन्न शिल्पों की परिस्थितियों का अलग–अलग विश्लेषण करने की आवश्यकता स्पष्ट की है। पानीपत के साक्ष्य भी दर्शाते हैं कि कुछ विशिष्ट व्यवसायों में गिरावट के बावजूद अन्य हस्तशिल्प गतिविधियाँ विद्यमान थीं। निष्कर्षतः, उन्नीसवीं सदी में पानीपत का हस्तशिल्प ग्रामीण उपभोग, स्थानीय व्यापार और कारीगरों के कौशल पर आधारित था। धातु–पात्र, चमड़े के पात्र और सजावटी काँच इसके उल्लेखनीय उत्पाद थे। विभिन्न शिल्पों में परिवर्तन की गति और प्रकृति अलग–अलग थी, इसलिए उनके विकास अथवा पतन का मूल्यांकन उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर पृथक रूप से किया जाना आवश्यक है।

निष्कर्ष

उन्नीसवीं सदी में पानीपत की कृषि अर्थव्यवस्था, व्यापार और हस्तशिल्प का अध्ययन स्पष्ट करता है कि यहाँ आर्थिक परिवर्तन बहुआयामी और क्षेत्रीय विषमताओं से प्रभावित था। कृषि स्थानीय अर्थव्यवस्था का केंद्रीय आधार बनी रही, लेकिन उसकी उत्पादक क्षमता मिट्टी, वर्षा और सिंचाई की उपलब्धता पर निर्भर थी। खादर और नहर से संबंधित क्षेत्रों में कुछ फसलों का बिक्री योग्य अधिशेष उत्पन्न होने की संभावनाएँ थीं, जबकि वर्षा–निर्भर क्षेत्रों में उत्पादन अधिक अनिश्चित बना रह सकता था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के साक्ष्य पानीपत में तुलनात्मक रूप से उल्लेखनीय सिंचाई उपलब्धता दर्शाते हैं, फिर भी पूरे क्षेत्र के लिए समान कृषि सुरक्षा का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। भूमि–राजस्व व्यवस्था ने कृषि अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। प्रारंभिक दशकों के अभिलेख कठोर राजस्व माँग, बकाये और संकटग्रस्त गाँवों की परिस्थितियों का उल्लेख करते हैं। इसके बाद सर्वेक्षण, राजस्व कटौती और बंदोबस्त संबंधी सुधार भी सामने आए। इस परिवर्तनशील क्रम से स्पष्ट होता है कि राजस्व प्रशासन का प्रभाव किसी एक स्थायी रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। कृषि संकट, पशुधन की हानि

और फसल–मूल्यों में उतार–चढ़ाव ने किसान की भुगतान क्षमता तथा भावी उत्पादन की संभावनाओं को प्रभावित किया।

व्यापार के क्षेत्र में पानीपत ने स्थानीय बाजार और क्षेत्रीय संपर्क–बिंदु की भूमिका निभाई। कृषि उपज, घी, कपास तथा अन्य वस्तुओं के प्रवाह में नगर का स्थान था। रेल और सड़क परिवहन के विकास से व्यापारिक मार्ग बदले, कुछ व्यापार पुराने मार्गों से हट गया, जबकि नए संपर्क उपलब्ध हुए। इस प्रक्रिया से पानीपत के लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों उत्पन्न हुईं। नगर का अधिकांश व्यापार स्थानीय प्रकृति का होना यह दर्शाता है कि उसकी आर्थिक पहचान का आधार केवल दूरगामी व्यापार नहीं था। हस्तशिल्प के क्षेत्र में पानीपत के ताँबे–पीतल के बर्तन, चमड़े के पात्र, सजावटी काँच और छोटे धातु–उत्पाद उल्लेखनीय थे। ग्रामीण बुनाई तथा अन्य उपयोगी शिल्प भी व्यापक क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था का हिस्सा थे। कुछ विशिष्ट व्यवसायों में गिरावट के साक्ष्य मिलते हैं, किंतु सभी हस्तशिल्पों के एकसमान पतन की धारणा उपलब्ध विवरणों से सिद्ध नहीं होती। आधुनिक पानीपत की वस्त्र–औद्योगिक पहचान को उन्नीसवीं सदी के प्रमाणों का विकल्प बनाना भी उचित नहीं होगा। अंततः इस शोध का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि उन्नीसवीं सदी के पानीपत में आर्थिक परिवर्तन कृषि उत्पादन, जल–संसाधन, भू–राजस्व, बाजार, परिवहन और कारीगरी के अंतर्संबंधों से निर्मित हुआ। परिवर्तन के लाभ और जोखिम क्षेत्र, व्यवसाय तथा संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार भिन्न थे। भविष्य में ग्रामवार बंदोबस्त अभिलेखों, नगरपालिका के चुंगी–विवरण, व्यापारिक खातों और शिल्प संबंधी अभिलेखों के आधार पर अधिक सूक्ष्म अध्ययन इस ऐतिहासिक चित्र को और स्पष्ट कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. इबेटसन, डेन्जिल चार्ल्स जे. (1883). रिपोर्ट ऑन द रिविजन ऑफ सेटलमेंट ऑफ द पानीपत तहसील एंड करनाल परगना ऑफ द करनाल डिस्ट्रिक्ट, 1872–1880. इलाहाबादः पायनियर प्रेस।
2. पंजाब सरकार. (1883–84). गजेटियर ऑफ द करनाल डिस्ट्रिक्ट, 1883–84. पंजाब डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स। पुनर्मुद्रित संस्करणः हरियाणा सरकार, राजस्व एवं आपदा प्रबंधन विभाग।
3. पंजाब सरकार. (1892). गजेटियर ऑफ द करनाल डिस्ट्रिक्ट. मुफीद–ए–आम प्रेस।
4. इबेटसन, डेन्जिल चार्ल्स जे. (1883). रिपोर्ट ऑन द सेंसस ऑफ द पंजाब टेकन ऑन द सेवेंटीन्थ ऑफ फरवरी 1881. खंड 1। कलकत्ताः सुपरिंटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग, इंडिया।

5. बेडन–पावेल, बी. एच. (1892). द लैंड–सिस्टम्स ऑफ ब्रिटिश इंडिया: बीइंग अ मैनुअल ऑफ द लैंड–टेन्योर्स एंड ऑफ द सिस्टम्स ऑफ लैंड–रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन प्रिवेलेंट इन द सेवरल प्रोविन्सेज. तीन खंड। ऑक्सफोर्ड: क्लेरेंडन प्रेस।
6. दत्त, रमेशचंद्र. (1902). द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अंडर अर्ली ब्रिटिश रूल. लंदन: केगन पॉल, ट्रेंच, ट्रूबनर एंड कंपनी।
7. दत्त, रमेशचंद्र. (1904). इंडिया इन द विक्टोरियन एज: एन इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ द पीपल. लंदन: केगन पॉल, ट्रेंच, ट्रूबनर एंड कंपनी।
8. पंजाब सरकार. (1918). करनाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 1918. पुनर्मुद्रित संस्करण: हरियाणा सरकार, राजस्व एवं आपदा प्रबंधन विभाग।
9. हरियाणा सरकार, राजस्व एवं आपदा प्रबंधन विभाग. (2015). पानीपत डिस्ट्रिक्ट गजेटियर. हरियाणा: गजेटियर्स ऑर्गेनाइजेशन।
10. व्हिटकॉम्ब, एलिजाबेथ. (1972). एग्रेरियन कंडीशन्स इन नॉर्दर्न इंडिया: द यूनाइटेड प्रोविन्सेज अंडर ब्रिटिश रूल, 1860–1900. खंड 1। बर्कले: यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
11. कुमार, धर्मा एवं देसाई, मेघनाद (सम्पा.). (1983). द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया. खंड 2: सी. 1757–सी. 1970। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. अली, इमरान. (1988). द पंजाब अंडर इम्पीरियलिज्म, 1885–1947. प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. टॉमलिन्सन, बी. आर. (1993). द इकोनॉमी ऑफ मॉडर्न इंडिया, 1860–1970. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
14. रॉय, तीर्थंकर. (1999). ट्रेडिशनल इंडस्ट्री इन द इकोनॉमी ऑफ कोलोनियल इंडिया. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।